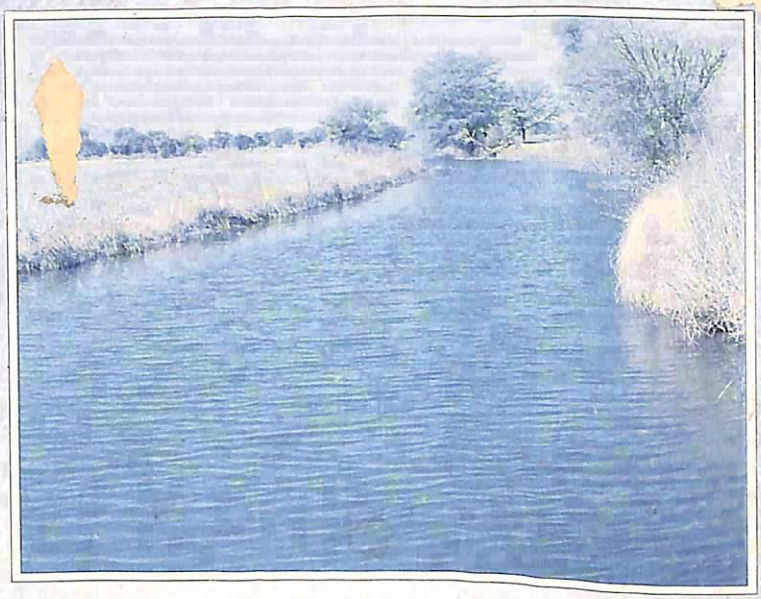

सरस गयी सरसा

प्रो. मोहन श्रोत्रिय
अविनाश

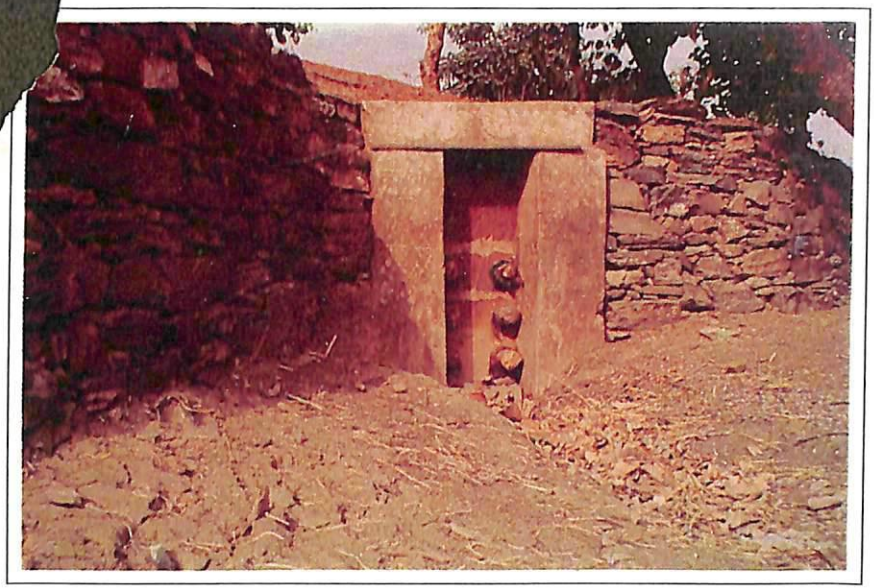

जोहड़ से पानी निकालने की पारम्परिक मोरी

सरसा के जलग्रहण क्षेत्र में सेन्द्रिय खाद बनाने की प्रक्रिया समझते हुए तरुण भारत संघ के कार्यकर्त्ता

सरस गयी सरसा

प्रो. मोहन श्रोत्रिय
अविनाश

तरुण भारत संघ
भीकमपुरा-किशोरी, थानागाजी, अलवर-301 022

प्रथम संस्करण : जनवरी 1998
प्रकाशक : तरुण भारत संघ
मुद्रक : कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर
छाया चित्र : राजेन्द्रसिंह

प्रस्तावना

मुझे सरसा नदी तथा समाज की कोई समझ नहीं थी। समाज में अन्याय है। शोषण है। असमानता है। यह समझ तो छात्र युवा संघर्ष वाहिनी ने दे ही दी थी। इसे मिटाने की प्रेरणा भी वहीं से मिली थी। यह कैसे संभव होगा, इसका तो अंदाज तक नहीं था। फिर भी अन्याय, असमानता और शोषण मिटाने के लिए चल पड़ा था। अपने साथियों के साथ। 1985 में जब गोपालपुरा गांव आया, तो पता चला मैं अंधेरे में हूं। हमारे इस गांव में तो असमानता, शोषण और अन्याय, तीनों ही दिखाई ही नहीं पड़ते। फिर भी पूरा समाज इनका शिकार हो चुका है। रोजी-रोटी कमाने के लिए गांव छोड़ देने को मजबूर कर देने वाले हालात ही अन्याय, असमानता और शोषण के प्रतीक हैं। यहां आकर लगा कि इनसे निपटने का तरीका तो स्वयं गांव ही खोज सकता है। बाहर का ज्ञान अथवा तरीका इसे मिटाने में कारगर नहीं होगा। मुझे यह समझ पाने में भी यहां आकर कई साल लगें। लेकिन जब यह बात समझ में आयी, तो फिर विकल्प खोजना छोड़ दिया। बस संकल्प करके काम में जुट गये। लोगों के साथ रात को बैठकर बात करने लगे और दिन में काम। गोपालपुरा में मेवालों का बांध और चौंतरेवाला जोहड़ बन गया। इन्हें देखकर काम चारों तरफ फैलने लगा। हम लोग जगह-जगह बुलाये जाने लगे। जहां-जहां बुलाये जाते, हम चल देते। गांव-गांव में बात फैली। काम फैला। हमें भी आनंद आने लगा। भीकमपुरा गांव हम तमाम साथियों के मिलने का स्थान था। हम जहां भी जाते, वहीं किसी के घर को अपना केंद्र बना लेते थे। कभी-कभी कुछ लोग हमें अधिक समय तक रखने के लिए अपनी झोंपड़ी भी दे देते थे। और हम वहां रहने लग जाते। जहां रहते, वहीं लोगों से पहले अलग-अलग और फिर उनको साथ बैठाकर बात करते। बात बन जाती, तो उनके साथ काम शुरू कर देते।

इस पूरे क्षेत्र को नेहड़ा कहते हैं। मैं लोगों से नेहड़ा का मतलब पूछता, तो वे बताते, हमारे क्षेत्र में पानी नेहड़ा (जमीन के ऊपरी तल के पास) था। इसलिए इस पूरे क्षेत्र को नेहड़ा कहते हैं। लेकिन उन दिनों ज्यादातर कुएं सूखे थे। कुएं गहरे करने के लिए सरकार पैसे दे रही थी। नये कुएं खोदने की मनाही थी। क्योंकि यह क्षेत्र सरकारी रिकार्ड में **डार्क ज़ोन** के रूप में दर्ज किया जा चुका था। **डार्क ज़ोन** यानी भू जल की अत्यंत कमीवाला क्षेत्र। मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। एक दिन अचानक समझ में आया कि लोग इसके अर्थ को समझते हैं। इसीलिए उन्होंने जोहड़ बनाने का काम शुरू किया है। इस घटना ने मुझे अंदर तक प्रकाशित कर दिया। हम सबका आत्मविश्वास बढ़ा। हमें कुछ अतिरिक्त ऊर्जा मिल गयी और हमने निश्चय कर लिया। हम लोगों के निर्णय एवं उनके तरीके से काम करेंगे। आज 13 वर्ष बाद मुझे लग रहा है उस समय किया गया हमारा संकल्प ही आज के भोगवादी विकास का एकमात्र विकल्प है। जो हमारे समाज को बचाये रख सकता है तथा अपने देशी तरीके से आगे बढ़ने की ताकत भी हमें देता है। इस काम की शुरुआत में बदरी मांगू के साथ समस्त गोपालपुरा वासियों ने हमारा मार्गदर्शन किया था। इस गांव से शुरू हुआ जल, जंगल जमीन संरक्षण का काम आज केवल सरसा नदी के जलागम क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है। पांच सौ से भी अधिक गांवों में फैल गया है। शुरू में इस काम को करने में बहुत कठिनाई आयी थी। सबसे पहले तो सिंचाई विभाग ने गोपालपुरा के लोगों के बांध को तोड़ने का नोटिस ही दे दिया था। उसके अमल के लिए विभाग ने कोई कसर भी नहीं छोड़ी थी। लेकिन इस क्षेत्र के लोगों नें संगठित होकर यह निर्णय लिया कि हमारी जमीन पर गिरा वर्षा का जल हमारा है। भगवान ने हमें दिया है। हम इस का सर्वहितकारी प्रबंधन करेंगे। अंत में विभाग को लोगों की बात माननी पड़ी। इससे लोगों की भी यह समझ बनी कि सरकार जनहितकारी कार्यों में सहयोग नहीं करती। आज की व्यवस्था समाज के कार्यों में बाधक है। नाम में कल्याणकारी और काम में विनाशकारी, शोषणकारी है। इस व्यवस्था को बदलने की जरूरत है। इस लिहाज से भी यह समाज स्वयं ही कुछ करने को प्रेरित हुआ। समाज ने पहले तो जल संरक्षण कार्यों पर ही जोर दिया। जल की व्यवस्था हो जाने के बाद लोग गोचर व जंगल के संरक्षण में जुट गये। दो सौ बीघा जमीन को साड्यावास के नाम से जाना जाता था। इसमें पशुओं से सुरक्षा करने की दृष्टि से पहले एक

चारदीवारी खड़ी की, फिर पौधे लगाये। चूंकि बांध - जोहड़ों से कुओं में पानी हो गया था, गोपालपुरा वासियों ने इन पौधों को पानी देकर बचाया। पौधे दो वर्ष के हो गये थे। घास और झरबेरी से मिलकर थोड़ी हरियाली नजर आने लगी थी। जुलाई 1989 में जिला प्रशासन ने हरियाणा से कुछ परिवार लाकर यह भूमि आवंटित कर दी। उन्होंने यहां पहुंचकर हरियाली नष्ट करना शुरू कर दिया। गांववासियों ने उन्हें रोका। जिला प्रशासन और पुलिस के देखते-देखते यहां की हरियाली नष्ट हो गयी। साथ ही साथ गांव के संगठन को तोड़ने का कुचक्र भी चलाया गया। लेकिन संगठन को तोड़ने में प्रशासन को कोई कामयाबी नहीं मिल पायी।

इस घटना ने समाज के मनोबल को काफी सीमा तक ध्वस्त कर दिया। इसलिए हमें लोगों में पुन: हिम्मत पैदा करने में अधिक शक्ति व समय लगाना पड़ा। इसी कारण इस दौर में सृजनात्मक काम कुछ कम हो पाया। लेकिन फिर 1990 तक हम समाज में पुन: आत्मविश्वास जाग्रत करने में सफल हो गये। सरसा नदी के जलागम के कामों की सूची देखी जाये, तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि 1990 से 1995 तक बहुत अधिक काम हुए हैं। 1986 में हुए कामों का असर तो पहली बरसात के बाद ही दिखने लगा था लेकिन बड़ा असर चार पांच साल बाद दिखा। जिन नालों पर जल संरक्षण कार्य हुआ था, उनमें बरसात के बाद के बाद हर साल अधिक समय तक पानी रहने लगा। झरनों में जल बहाव की मात्रा भी अधिक होने लगी। ठीक दस साल बाद 1996 में पहली बार यह नदी पूरे साल बहती रही। इस नदी को फिर से बहाने में रायपुरा भाल, सूरतगढ़, बाछड़ी, मैजोड़, कालालाकां, अंगारी, जयसिंहपुरा, डूमेड़ा, काबलीगढ़, क्यारा, किशोरी, भीकमपुरा, बल्लूवास, दौलतपुरा, बांकला, अजबगढ़ के 27 गुवाड़ों के समस्त गांववासियों का पूरा सहयोग रहा है। यहां कुछ व्यक्तियों के नामों का उल्लेख करना उचित होगा। पेमाराम, हनुमान, रामबक्श (बाछड़ी) गोपाल, रामजीलाल, रमसी, जगदीश (कालालाकां), गोपालदत्त (बामनवास), मातादीन, प्रहलाद्, मंगलराम (काबलीगढ़), गोपाल (मैजोड़) किसन सिंह (गुढ़ा किशोरदास), सुमेर सिंह, जगदीश मेहरा, वासुदेव भट्ट, रजनी शर्मा, उमराव, हनुमान, बनवारी, केदार, राजेश, लालचंद, मनकी देवी, छोटे देवी, गणेश कीर, चौथी, रूड़ी, भगवान सहाय गुर्जर, सूरज भान, भगवान सहाय मीणा, कजोड़, जौहर, गौरी सहाय,

रब्बू मीणा, छीतर, केसरी, धन्ना, शांति, मूलचंद, जीवन, डालचंद रैगर, स्व. जगदीश शर्मा (सूरतगढ़) ने बहुत सहयोग किया। इसी प्रकार रामनाथ, रामेश्वर, घीसी, पूनी, मांगी, गोकुल, श्रवण (क्यारा), भगीरथ मीणा, मुरली गुर्जर (बल्लूवास), स्व. सेठ बद्रीप्रसाद, गणपसिंह, बालकिशन जी, कैलाश, नाथू, दयाल, जतन सिंह, ज्ञानचंद गुप्ता, किस्तूरी, भगवती, कमली, सीताराम, दिलीपसिंह, प्रह्लाद सिंह (भीकमपुरा) ने भी बहुत प्रेम एवं सहयोग से काम किया। भगवान सहाय सेन ने आश्रम के लिए जमीन भी उपलब्ध करायी। भीकमपुरावासियों का सरसा नदी को पुनरुज्जीवित करने में सबसे अधिक सहयोग रहा। किशोरी के मीणों ने 1987 में तेलियोंवाला तथा कल्याण और श्रीनारायण बोहरा ने इस नदी पर 1988 में ही पहला बड़ा एनीकट बना लिया था। सरसा नदी को बहाने में इस एनीकट की बड़ी भूमिका है। कीठला के किशनलाल, श्यालुता के रामधन, गुगली के गुवाड़े के रामनाथ मीणा (पूर्व प्रधानाचार्य) गोविंदराम सताईस गुवाड़ों में भगवानसहाय, प्रभू आदि नाम ऐसे हैं, जिनका उल्लेख किये बिना यह कहानी पूरी नहीं हो सकती। इस क्षेत्र में लोगों के साथ मिलकर काम तो स्वयं मैंने शुरू किया था, लेकिन केदार श्रीमाल, नरेंद्र सिंह, हनुमान जाट, दृगपालसिंह, सतेंद्र जी से लेकर लक्ष्मण सिंह, गोपाल सिंह आदि ने इस काम के संचालन में पूर्णकालिक कार्यकर्ता के रूप में संस्था का सहयोग किया है। कैलाश और देवीसहाय सरीखे सैकड़ों युवाओं ने इस काम में अपनी ऊर्जा दी है। सरसा क्षेत्र की जनता ने इस क्षेत्र में अपनी श्रमनिष्ठा से जो अलख जगायी है, उसे भुलाया नहीं जा सकता। उन सबके प्रति कृतज्ञता प्रकट करके मैं स्वयं को और संस्था को धन्य मानता हूँ। सरसा नदी के पुनरुज्जीवित होने की कथा को **सरस गयी सरसा** के रूप में प्रस्तुत किया है **प्रो. मोहन श्रोत्रिय** और **युवा कवि अविनाश** ने। इनकी कलम से निकल कर यह कथा बेहद रोचक और जीवंत बन गयी है। मैं इन दोनों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

राजेन्द्रसिंह
महामंत्री, तरुण भारत संघ

सरस गयी सरसा

नदियां किसी भी सभ्यता की अर्द्धांगिनी होती हैं। उसके पोर-पोर से जुड़ी होती हैं। ऐसी कि अगर नदियां न हों, तो सभ्यता विकास की अधूरी पगडंडियों पर ही स्थगित हो जाये। इसे और आगे बढ़ाएं, तो बात यों निकल कर आएगी कि नदियां न होती तो मानव सभ्यता व संस्कृति के विकास की प्रक्रिया उतनी सोल्लास व ऊर्जावान हो ही नहीं सकती थी, जितनी कि वह नदियों से जुड़ने पर बन पायी। नदियां जीवनदायी होती हैं, तभी तो हमारे पुरखों ने नदियों पर गीत रचे। मंत्रों और ऋचाओं के माध्यम से अपने उद्‌गार व्यक्ति किये। कूर्म पुराण के आठवें अध्याय में तो आदमी के अस्तित्व और उसकी संवेदनाओं से जोड़ते हुए नदियों को इस तरह महिमामंडित किया गया है :

त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम्
सद्यः पुनाति गांगेयं दर्शनादेव तु नार्मदम्।

इस श्लोक का अर्थ साफ है कि सरस्वती तीन दिन में, यमुना एक सप्ताह में, गंगा तुरंत और नर्मदा तो दर्शन मात्र से पवित्र कर देती है। यह पवित्रता भले ही पाप और पुण्य के अर्थों में प्रचारित की गयी हो, सच तो यह है कि यह हमारे मानसिक एवं आत्मिक विकास की सूचक पवित्रता है। 33 हजार पांच सौ करोड़ साल पहले जन्मी इस पृथ्वी की सतह में दरारें पड़नी शुरू हुई। उसके बाद नदियां बनीं और जब इस धरती पर मानव का आविर्भाव हुआ, नदियों के सान्निध्य ने ही उसे आगे बढ़ने का रास्ता दिखाया। हम यहां उन नदियों का जिक्र करने जा रहे हैं, जिनके इतिहास और भूगोल की परिधि छोटी जरूर है, किंतु जीवन की सृजनधर्मिता को जीवित रखने के लिए जो बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। ये नदियां आज अपने पुनर्जीवन के बेहद ही खूबसूरत रूंप में व्यक्त हो रही हैं। जो व्यवस्था की जड़ हो चुकी संवेदना का शिकार होकर मर चुकी थीं। ऐसी ही एक नदी है सरसा। यह अरावली पर्वत शृंखला के सरिस्का क्षेत्र की उन सात नदियों में से हैं, जो पिछले आठ दस वर्षों के दौरान बड़े पैमाने पर **तरुण भारत संघ** और अंचल के लोगों की साझी सहभागिता के परिणामस्वरूप पुनरुज्जीवित हुई हैं। जो कभी बरसात के दिनों में भी नाले जैसी दिखती थी, वही सरसा आज कल-कल करती हुई अपने नाम को चरितार्थ कर रही है। यथा नाम तथा गुण को मूर्त रूप देने वाली सरसा नदी अंचल के लोगों की बात ही छोड़ें, बाहर से आकर इसे देखनेवालों तक को सरसा देती है।

सागर तक को सजल बनाये सरसा...

सरसा नदी अंगारी गांव की पहाड़ियों से निकलती है। इसकी दूसरी धारा गुढ़ा किशोरदास से निकलकर डूमेडा के पास आकर मुख्यधारा में मिल जाती है। तीसरी धारा मैजोड़ से शुरू होती है। फिर बामनवास के नीचे बहने वाली मुख्यधारा में मिल जाती है। चौथी धारा सूरतगढ़ से शुरू होती है। यह धारा क्यारा को छूती हुई किशोरी के खेतों के पास आकर मुख्यधारा में मिलती है। पांचवीं धारा रायपुरा भाल, जिसे गुर्जरों का ग्वाडा भी कहते हैं, के ऊपर से होती हुई किशोरी में मुख्यधारा से आ मिलती है। छठी धारा भाल व सरिस्का की पहाड़ियों की पश्चिमी ढलान का पानी लेती हुई भीकमपुरा गांव के सामने आकर मुख्यधारा में मिलती है। सातवीं धारा साड्यास, गोपालपुरा

व गोविंदपुरा होते हुए जैतपुर के पास से गुजरनेवाली मुख्यधारा में मिलती है। आठवीं धारा हजारी घाटी से शुरू होकर पिपलाई, मोरड़ी और कुंडल्या होती हुई मालियों की ढ़ाणी से नीचे आकर मुख्यधारा में मिलती है। इसके बाद कई छोटी-छोटी धाराएं ग्वाडों के ऊपर से होती हुई मुख्यधारा में मिलकर अजबगढ़ पहुंच जाती है। नवीं धारा अजबगढ़ की पहाड़ियों में बने सोमासागर को भरने के लिए रुकती है, और यह काम पूरा होते ही जय सागर को सजल बनाने के

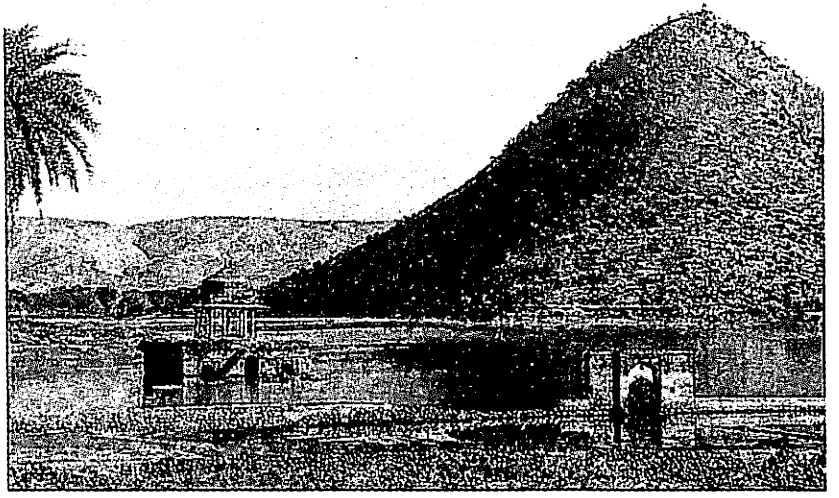

लिए आगे चल पड़ती है। वहां से आगे थोड़ा नीचे उतरकर भानगढ़ के पास पहुंचती है। यह वही भानगढ़ है, जहां एक अत्यंत सुव्यवस्थित नगर के अवशेष बिना किन्हीं शिलालेखों के सहारे एक विकसित नगर व्यवस्था के लुप्त हो जाने की कहानी कहते हुए दिखते हैं। यहां से आगे बढ़कर सरसा नदी धीरोडा, कीटला, श्यालुता, नांगलदासा होते हुए बाणगंगा में जाकर विलीन हो जाती है। बाणगंगा में मिलने से पहले नारायणीजी का नाला तथा बलदेवगढ़, बैरवा डूंगरी आदि जगहों से आनेवाली छोटी-छोटी धाराएं भी सरसा नदी में आकर मिलती हैं। इस तरह दस छोटी-बड़ी उपधाराओं से मिलकर बना है **सरसा** नदी का स्वरूप, जो इस अर्थ में और भी अधिक **सरसा** है कि यह न हो तो ऊपर जिन सागरों का वर्णन किया गया है, वे रीते ही रह जाएं। सूखे ही रह जाएं।

रुठ गये झरने पेड़ों के कटने से...

जब तक सरिस्का क्षेत्र के पहाड़ों पर हरियाली थी, घने जंगल थे, तब तक इन पहाड़ों से सैकड़ों झरने बहा करते थे। ये सब झरने मिलकर ही सरसा नदी के अस्तित्व को संभव बनाते थे और उसके सौंदर्य को मनोरम। मानसून की कृपा बनी रहती, तो पौष-माघ और फाल्गुन तक इन धाराओं में पानी बहा करता था लेकिन आजादी के आसपास जब सामलाती के जंगल सरकारी होने लगे, तो बड़ी तादाद में जंगलों की कटाई का कुत्सित अभियान शुरू हो गया। इससे पहले वन प्रबंधन का काम लोगों का अपना था। लोग अपनी मौलिक जरूरतों के मुताबिक ही वनों का उपयोग करते थे। कोई व्यक्ति अगर अपनी जरूरत से अधिक उन वनों का दोहन करता, तो उसके लिए जुर्माने का प्रावधान भी था। आजादी के बाद इन जंगलों का कोई धनी-धोरी, मालिक-मुख्तार नहीं रहा। सारा का सारा जंगल वन विभाग के कब्जे में चले जाने के कारण लोग भी जंगल की ओर से उदासीन हो गये। इस जंगल का कौन क्या करता है, इससे उन्हें कोई मतलब नहीं रह गया। जंगल और जंगल के आसपास बसे लोगों के बीच जिस तरह का अलगाव, या कहिए परायापन पैदा हो गया था, उसके चलते और प्रतिक्रिया हो भी क्या सकती थी। और इस तरह पूरी बेहयाई से जंगल काटा जाने लगा। कुछ इस भाव से कि **लूट सके सो लूट**। वन विभाग के कर्मचारियों ने भी ऐसे तत्वों की खुलकर मदद की, जो वनों की कटाई करके अपने घर बना रहे थे। ये कर्मचारी अपना हफ्ता मिल जाने से इतने मगन थे कि वनों की अवैध कटाई उनकी चेतना पर किसी भी तरह का दबाव बना पाने में एकदम अक्षम हो गयी थी। इस तरह जंगल के खत्म होने के साथ-साथ पानी का खत्म हो जाना भी स्वाभाविक बन गया। पिछले तीस चालीस साल का रिकार्ड बताता है कि जिस दिन वर्षा होती थी, बस उसी दिन पानी के दर्शन होते थे और फिर अगले ही दिन पानी गायब। यानी एक दिन के दर्शन भर के अलावा जरूरत के समय सरसा नदी सूखी ही मिलती थी। और झरने तो जैसे रूठ ही गये थे।

इस प्रकार सूखे ने इस पूरी नदी के जलागम क्षेत्र को अपनी चपेट में ले लिया। अलबत्ता सरकार ने भी यह सब देखकर इस पूरे इलाके को **डार्क ज़ोन** घोषित कर दिया। जैसे ऐसा कर देने भर से ही उसके कर्त्तव्य और समाज के प्रति दाय की इतिश्री हो जाती हो। इधर पुराने कुएं सूखने लगे थे। चारों

और पानी का जबरदस्त अभाव दिखने लगा। ऐसा अभाव कि लोग बदहवास होकर इधर-उधर भागने लगे। इतिहास गवाह है कि जहां-जहां पानी का लोप हुआ है, वहां-वहां सभ्यता में दरार पड़ने लगी है। **जिन्होंने बहुत-बहुत पानी देखा है, उनकी आंखों के आगे से पानी ओझल हो जाये, तो उन्हें कोई राह नहीं सूझती।** सरसा नदी के जलागम क्षेत्र में आनेवाले गांव के गांव भी पलायन करने लगे। जो गांवों में बच गये, वे होठों को पपड़ा देनेवाली और गले में कांटे उगा देने वाली प्यास को झेलते हुए भी यहां से कहीं और चले जाने की सोच भी नहीं सकते थे। कुछ तो इसलिए कि उनकी जड़ें बहुत गहरी थीं, और कुछ दूसरे इसलिए कि वे शरीर से अशक्त थे। किसानों ने अपने दरवाजों से गायों को खोल दिया। उन दिनों में भैंस पालना तो एक सपने की तरह था। एक ऐसे सपने की तरह, जिसे देखने से भी झुरझुरी आजाती है। पीने के पानी के तो लाले पड़े थे, ऐसे में खेती बाड़ी की कल्पना भी कैसे की जा सकती थी। नहाना-धोना जो कभी रोज की आदत का हिस्सा होता था, वह भी गुजरे जमाने के ऐश जैसी बात बन गया था।

जाग उठे थे लोग...

वह ऐसा ही तबाही का दौर था, जब गोपालपुरा गांव में **तरुण भारत संघ** की मदद से पानी का काम शुरू हुआ। जोहड़ बनाने के इल्म में माहिर माने जाने वाले मीणाओं की बस्ती गोपालपुरा में सबसे पहले 1986 में मेवालों का बांध बना और फिर चौंतरेवाला जोहड़। इनके बनने से एक बारगी ही पानी चमक उठा लेकिन पानी के पुनर्जीवन का अंकुर अभी ठीक से फूटा भी न था कि सिंचाई विभाग ने उन्हें तोड़ने के नोटिस जारी कर दिये। पर तब तक गोपालपुरा के लोग पानी पा लेने के सुख से अभिभूत, अपना संगठन भी कायम कर चुके थे। एक जीवंत और जुझारू संगठन। सामूहिक सोच और सामूहिक कर्म के लाभ का एहसास उन्हें हो चुका था। 1988 में तत्कालीन प्रधानमंत्री **राजीव गांधी** ने सरिस्का में अपने मंत्रिमंडल की एक बैठक रखी थी। देश के इतिहास में केंद्रीय मंत्रिमंडल की यह पहली बैठक थी जो नयी दिल्ली के बाहर हुई थी। गोपालपुरा वासियों ने सिंचाई विभाग और जिला प्रशासन के कुरूप चेहरे और बदनीयती को प्रधानमंत्री के सामने एक ज्ञापन के रूप में रख कर उजागर कर दिया।

इस घटना से जिला प्रशासन और भड़का उठा। वह गोपालपुरा के जोहड़ों के आगौर, जिसे हम जलागम क्षेत्र भी कह सकते हैं, में खानाबदोश बंजारों को बसाने लगा। यह वैश्वीकरण (ग्लोबलाइजेशन) का वह दौर था, जब दुनिया भर के स्तर पर पर्यावरण को विकास की एक अहम धारा माना जा रहा था। यही वजह थी कि राजधानी दिल्ली के कुछ वरिष्ठ पत्रकारों और पर्यावरणविदों ने इस मामले में हस्तक्षेप कर गोपालपुरा के लोगों का साथ दिया।

अंगारी की आंच...

गोपालपुरा में नये बने बांधों का असर अगले वर्ष से सामने आने लगा था। सो इसके असर को देखकर 1987 में सरसा नदी के सबसे ऊपरी गांव अंगारी में भी पानी के पुनर्जीवन को लेकर ऐसा ही काम शुरू हो गया। अंगारी वही गांव है, जहां से सरसा नदी निकलती है। इस गांव में गोपालपुरा गांव की कई रिश्तेदारियां हैं। इस गांव का कुल क्षेत्रफल 1163 हेक्टेयर है, जिसमें से 95 हेक्टेयर भूमि पर सिंचित खेती है। 336 हेक्टेयर असिंचित खेती होती है। शेष 732 हेक्टेयर भूमि पर पहाड़ी शृंखलाएं हैं। इस गांव से पानी दो हिस्सों में बंटता है। सरसा नदी की धारावाले हिस्से पर लोगों ने बांध बनाना तय किया ताकि पानी को रोका जा सके और अकाल से उबरा जा सके। बांध बनकर तैयार हो गया।

जुलाई '88 की वर्षा में यह बांध पूरा भर गया। इस बांध का भराव क्षेत्र लगभग सात हेक्टेयर है, जिसमें पानी पूरा का पूरा फैल गया था। यह सारा पानी अक्टूबर के अंत तक खाली हो गया और इस सारी भूमि में गेहूं बो दिये गये। परिणाम देखकर गांववालों की बांछें खिल गयीं। अंगारी में कितने ही सालों के बाद गेहूँ की फसल लहलहा रही थी। '88 की बारिश में जब यह बांध भरा, तो बांध के नीचे की तरफ के 21 कुओं का जलस्तर रातोंरात ऊपर आ गया। इन कुओं में सात कुएं तो ऐसे थे, जिनमें पानी के कभी दर्शन ही नहीं होते थे। इन कुओं से लगभग 23 हेक्टेयर क्षेत्रफल वाली भूमि दो बार से तीन बार सिंचित होने लगी। ये वे कुएं थे, जिनका जलस्तर या तो बहुत कम हो गया था, या जो बिल्कुल ही सूख गये थे।

इस बांध से लगभग 50 हेक्टेयर भूमि का कटाव थम गया। पहले होता यह था कि पानी तो ठहरता नहीं था, पानी के साथ-साथ अंगारी की ढेर सारी उपजाऊ भूमि भी कटकर बह जाया करती थी। इस बांध के बन जाने के बाद गांव की लगभग एक सौ पचास हेक्टेयर उपजाऊ भूमि कटकर बाहर जाने से रुक गयी। इस बांध के जलागम में नंगी पहाड़ियां होने के कारण तेज बरसात के समय मिट्टी का कटाव अधिक होने लगा था।

किसान यह सब उदास आंखों से देखा करता कि जिस मिट्टी की उपजाऊ परत को बनने में कई सौ वर्ष लगते हैं, वह वृक्षविहीन ढालू पहाड़ियों पर पानी के वेग के कारण मिनटों में कटकर बह जाया करती थी। साथ-साथ पत्थर के टुकड़ों को भी बहाकर ले जाया करती थी। अत: वह जहां जमती थी, वहां भी भूमि को बर्बाद कर देती थी। अब इस गांव के एक बड़े हिस्से पर मिट्टी और पत्थरों का कटकर बह जाना रुक गया है।

अंगारी में इस बांध से अब दो सौ हेक्टेयर भूमि में नमी बनी रहती है। नमी के कारण अब घास भी खूब दिखाई देने लगी है। कीकर, रोंज, पापड़ा, नीम, पीपल आदि के वृक्ष स्वत: उग आये हैं। इससे आसपास की पारिस्थितिकी का खूबसूरत विकास भी हो रहा है। अब यहां जंगली जानवरों और पालतू पशुओं के लिए भी पानी की कमी नहीं रही है। ढेर सारे वृक्षों पर पंछी अपने कलात्मक नीड़ का निर्माण कर चुके हैं। पहले की अपेक्षा अब दो सौ क्विंटल अनाज अतिरिक्त पैदा होने लगा है। पशुओं के लिए चारे की तो कोई कमी ही नहीं रह गयी है।

रुका पलायन बांध से...

अंगारी गांव के **रामनिवास मीणा** का कहना है कि यदि यह बांध नहीं बनता, तो सरसा नदी फिर से सजल नही हुई होती। हम 17 परिवार तो गांव छोड़कर बाहर चले ही जाते। हमारा कोई धणी-धोरी नहीं था। अब तो यह बांध ही हमारा सब कुछ है। **रामनिवास** कहते हैं कि बांध में पानी भरने के तुरंत बाद उन कुओं के जलागम क्षेत्र में मक्का की

तमाम फसलें सूख गयी थीं। **प्रभाती** कहते हैं : हमारी जमीन पर पहले की तुलना में अब तीन गुना फसल अधिक होने लगी है। **छोटे बलाई** बताते हैं सरकार ने आज तक हमारे गांव के लिए कोई काम नहीं किया। इस बांध की वजह से ही हम लोग अंगारी में रह पाये हैं, नहीं तो हम भी दूसरों की तरह मजूरी की खोज में दिल्ली चले जाते। कुएं भरे रहने से अब गांव लगभग एक सौ व्यक्तियों को अपनी ही जमीन पर 90 दिनों का अतिरिक्त रोजगार मिल गया है। पलायन तो पूरी तरह समाप्त हो ही गया है। अब कोई बाहर जाता भी है, तो किसी मजबूरी में नहीं, बल्कि घूमने फिरने, रिश्तेदारी निभाने या ऊंची पढ़ाई करने के उद्देश्य से जाता है।

नदी की धारा उसकी घाटी में बसनेवाले गांवों की पूंजी होती है। यह आपस में भाईचारे जैसे स्थितियों को बढ़ाती है और सहकारिता को उसके वास्तविक रूप में कायम रखती है। नदी और उसका पानी प्राकृतिक संसाधनों के लिए रीढ़ की हड्डी की तरह है। अंगारी में बांध बनने के बाद मैजोड़, बाछड़ी,, कालालांका, काबलीगढ़, सूरतगढ़, क्यारा, रायपुरा भाल, किशोरी, भीकमपुरा, गोविन्दपुरा, जैतपुर, सिली बावड़ी आदि सभी गांवों में भी बांध और जोहड़ बनाने का काम शुरू हो गया। एक के बाद एक जोहड़ बांध बनने लगे। बहुत सुकून देनेवाली है यह उपलब्धि कि आज इस क्षेत्र में 165 बांध बन चुके हैं। यह नदी 1995 से अब पूरे साल बहने लगी है। लेकिन पूरी तरह सूखी पड़ी हुई नदियां अचानक और एक बारगी ही बहने नहीं लग जातीं। सरसा नदी भी यूं ही नहीं बहना शुरू हो गयी। उसके बहने की भी एक कहानी है।

ऐसे सरस हुई सरसा

इस नदी के जलागम क्षेत्र में 1986 में पहला जोहड़ बनकर तैयार हो गया था। '87-88 में सत्तर के आस-पास जोहड़ बन चुके थे। अब यह आंकड़ा दो सौ की संख्या को पार कर गया है, जिसके परिणामस्वरूप यह नदी बहने लगी। 1990 में यह असोज यानी अक्टूबर तक बही। 1991 में कार्तिक अर्थात नवंबर तक बही। 1992 में पौष यानी दिसंबर तक। 1993 में फरवरी यानी फाल्गुन तक। 1994 में चैत-बैशाख यानी

मार्च और अप्रैल तक सरसा नदी में पानी दिखा । अगले साल 1995 में मई और जून में पहली बार पूरे साल पानी देखा गया । जेठ के महीने में भी आंखों के सामने पानी होने से कई हजार आंखें एक साथ चमक उठीं । यह पानी सबसे पहले किसानों के कुओं में और खेतों में दिखाई पड़ा । किसानों के कुओं और खेतों को भरने के बाद यह पानी नदी में बहने लगा । और आज यह हजार-हजार खुशियां बनकर हजार हजार आंखों में बहता दिखाई देता है ।

अब दरवाजों पर पहले की तरह भेड़-बकरी बंधी नहीं दिखाई पड़ती हैं । उनकी जगह अब गाय और भैंसें दिखती हैं । गांव-गांव के जवान लड़के अब खेतों में काम करना ज्यादा पसंद करते हैं ।

अंगारी के काम को देखकर, उससे प्रेरणा लेकर काबलीगढ़ के लोगों ने भी अपने जंगल में जोहड़-बांध बनाने का काम शुरू कर दिया। आस-पास के गांवों में जल और जंगल बचाने के काम के पक्ष में माहौल बनने लग गया। काबलीगढ़ के **मातादीन मीणा** अपने साथियों के साथ इस काम के लिए निकल पड़े । अभियान की शैली में ।

सूरतगढ़ के लोगों ने भांवता में हुए काम को देखकर अपने यहां जल प्रबंधन के काम को हाथ में लेने की प्रेरणा पायी। यहां सबसे पहले श्री सुमेर सिंह की अध्यक्षता में ग्रामसभा का गठन हुआ। इस ग्रामसभा ने जंगल बचाने व जल संवर्द्धन के काम गंभीरता से लिया। इसके साथ ही यहां महिलाओं

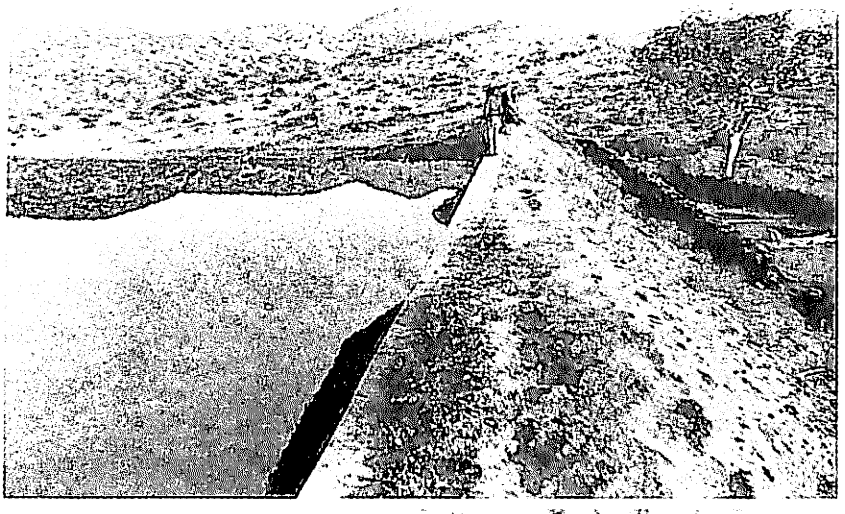

का भी एक मजबूत संगठन अस्तित्व में आया। यों तो इस गांव में 10-15 जोहड़, चैक डैम व बांध बने हैं लेकिन दिलचस्प बात यह है कि यहां एक जोहड़ केवल महिलाओं के नेतृत्व में निर्मित हुआ है। इस जोहड़ का नाम है बुआवाला जोहड़।

इस गांव में, बेहद गरीबी का जीवन जी रहे भगवान सहाय गुर्जर ने अपने समूचे परिवार के श्रमदान के बूते पर रावणवाली नदी (सरसा की ही एक उपधारा) पर एक एनीकट बनाया जिससे सरसा नदी और सरसा गयी।

बिन पानी सब सून...

अक्सर ऐसा होता है कि नदियों की चर्चा फसल और प्यास तक ही विस्तार पाकर रह जाती है। लेकिन यह तथ्य है कि नदी-पानी के न होने से कई दूसरी तरह की अराजकताएं भी सामने आने लगती हैं। लोगों की सांस्कृतिक समझ में घुन लगने लगता है और सामलात देह की व्यवस्था बिखरने लग जाती है। सूरतगढ़ में लोगों ने शराब बनाना शुरू कर दिया था। दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह और मृत्युभोज का प्रचलन काफी बढ़ गया था। लोग बदहाल तो पहले से ही थे, इन

कुप्रथाओं ने उनकी बदहाली को और अधिक दारुण रूप से दिया। **तरुण भारत संघ** की पहल पर इन कुप्रथाओं के खिलाफ मुहिम छेड़ी गयी। साथ ही आरंभ हुआ पानी सहेजने के लिए ग्रामीणों का सामलाती प्रयास।

वर्ष 1987 तक सूरतगढ़ की पहचान सूखाग्रस्त क्षेत्र के रूप में रही। सूखे ने गांववालों को वर्षों से बेचैन कर रखा था। बरसात के दिनों में वर्षा होती, लेकिन जल प्रबंधन समुचित नहीं होने के कारण पानी सूरतगढ़ में नहीं रुकता था। वर्षा होने के बावजूद गांव सूखा का सूखा रह जाता था। कुओं का जलस्तर बढ़ने की तो कोई बात ही नहीं थी। गांव में किबराली की एक छोटी-सी जोहड़ी थी। पर उसमें भी पानी कम ही ठहरता था। इसलिए आषाढ़ के पहले दिन से आखिरी दिन तक वर्षा होने के बावजूद सूरतगढ़ सूखा रहने की पीड़ा झेलने के लिए विवश रहता। सन् 1985-86 में जब सूखे का विकराल रूप सामने था, सूरतगढ़ में पानी व चारे की बहुत विकट समस्या खड़ी हो गयी थी। पशुओं के सामने चारे के रूप में रोजड़ा के पेड़ की छाल डालने तक की नौबत आ चुकी थी। पशु कुपोषण के शिकार होने लगे थे। आदमी दाने-दाने को मोहताज हो रहा था। दूसरे गांवों से चारा लाते-लाते भी लोग थक चुके थे। फिर दूसरे गांवों में इस बावत प्रतिरोध भी सहना पड़ता था, क्योंकि वहां भी पानी का समंदर नहीं बहता था। पानी का दुख सभी जगह था – कहीं कम, कहीं ज्यादा। चारे के मूल्यों में इस कदर वृद्धि हो गयी थी कि आदमी उसे खरीदने में सक्षम नहीं था। स्थितियां पूरी तरह से लाचारी की सूचक थीं। घोर बदहाली की। इस गांव में कीर जाति के लोग भी रहते हैं, जिन्हें चापुन्या की लकड़ियों से खूबसूरत टोकरियां बनाने की महारत हासिल है। अकाल ने सूरतगढ़ के जंगलों-पहाड़ों से चापुन्या की लकड़ी खत्म कर दी थी। कीर जाति के लोग दूसरे गांवों के जंगलों-पहाड़ों पर निर्भर रहने लगे थे। इन्हीं नाजुक स्थितियों में **तरुण भारत संघ** का प्रवेश सूरतगढ़ में हुआ। संघ की पहल पर मार्च 1990 में सूरतगढ़ गांव में सरसा नदी की एक जलधारा, हजारीवाला नाला पर एक बांध बनाया गया।

सरसा ले आयी खुशहाली...

सरसा नदी के सरस होते ही इसके जलागम क्षेत्र के गांवों के कायापलट की प्रक्रिया भी शुरू हो गयी। आज सूरतगढ़ में भी गोपालपुरा

और अंगारी जैसे गांवों की तरह ही समृद्धि अपने पांव पसार चुकी है। उन गांवों की कथा हम आपको सुना चुके हैं। आइये, सूरतगढ़ को नयी मिली समृद्धि की कहानी, सुनते हैं यहीं के लोगों की जुबानी : **रजनी देवी भट्ट** अपना अनुभव बताती हैं। सूरतगढ़ रजनी देवी की ससुराल है। पीहर राजस्थान का भरतपुर जिला, खास शहर। शहर की पढ़ी-लिखी **रजनी देवी भट्ट** 1962 में जब इस गांव में आयीं, तब भी अकाल का दामन चारों और फैला हुआ था। कहती हैं : मेरे घर के सामने चार कुएं हैं। सभी सूखे पड़े थे। गांव में जौ, चना और सरसों की फसल होती थी। श्रमिक महिलाएं जंगल से सूखी लकड़ियां लाकर बेचती थीं। **तरुण भारत संघ** की मदद से जब हमने अपने यहां सात-आठ बंधे-जोहड़ बनाये, तो पानी का अभाव नहीं रहा। पूरा का पूरा जीवन ही बदल गया। गांव की कृषि के केंद्र में अब गेहूँ जैसी फसल आ गयी है। ऊसर जमीनें उपजाऊ जमीन में बदल गयी हैं। इस तरह सवाईचक में पड़नेवाली भूमि सामलात देह के दायरे में आ रही है।

आज लगभग सभी परिवारों के पास अपना पैदा किया हुआ अन्न है। अपना काम है। काम की तलाश में बाहर जाना लगभग बंद हो गया है। वे आज अपने गांव में कृषि और पशुपालन जैसे कार्यों में जमकर लगे हुए हैं। **रजनी देवी** कहती हैं कि आज खुशहाली हमारे सामने खड़ी है।

उमराव लाल कीर सूरतगढ़ गांव के पढ़े-लिखे युवक हैं। कहते हैं, मेरे मन में काफी दिनों से इच्छा थी कि काश गांव में बांध होता। 1990 में जब **तरुण भारत संघ** की मदद से हमने बांध बनाया, तो बहुत खुशी हुई। हमने तो वरना तय कर लिया था कि शहर जाकर कोई रोजगार करेंगे। क्योंकि उस समय पानी रोकने की कोई सूरत ही नजर नहीं आती थी।

जगदीश कीर ने अपने खेतों में पानी रोकने के लिए **तरुण भारत संघ** की मदद से एनीकट बनाया। वह आज सूरतगढ़ के समृद्ध किसानों में से एक हैं। कहते हैं – एनीकट नू बनवा सूं खेतां में खाद की माटी आकर जमी। जमता-जमता सारो नालो माटी सूं भरगो। जिसु अब इ

सरसा देवी नदी
जलागम क्षेत्र, जिला-अलवर

(दिसम्बर 1997)

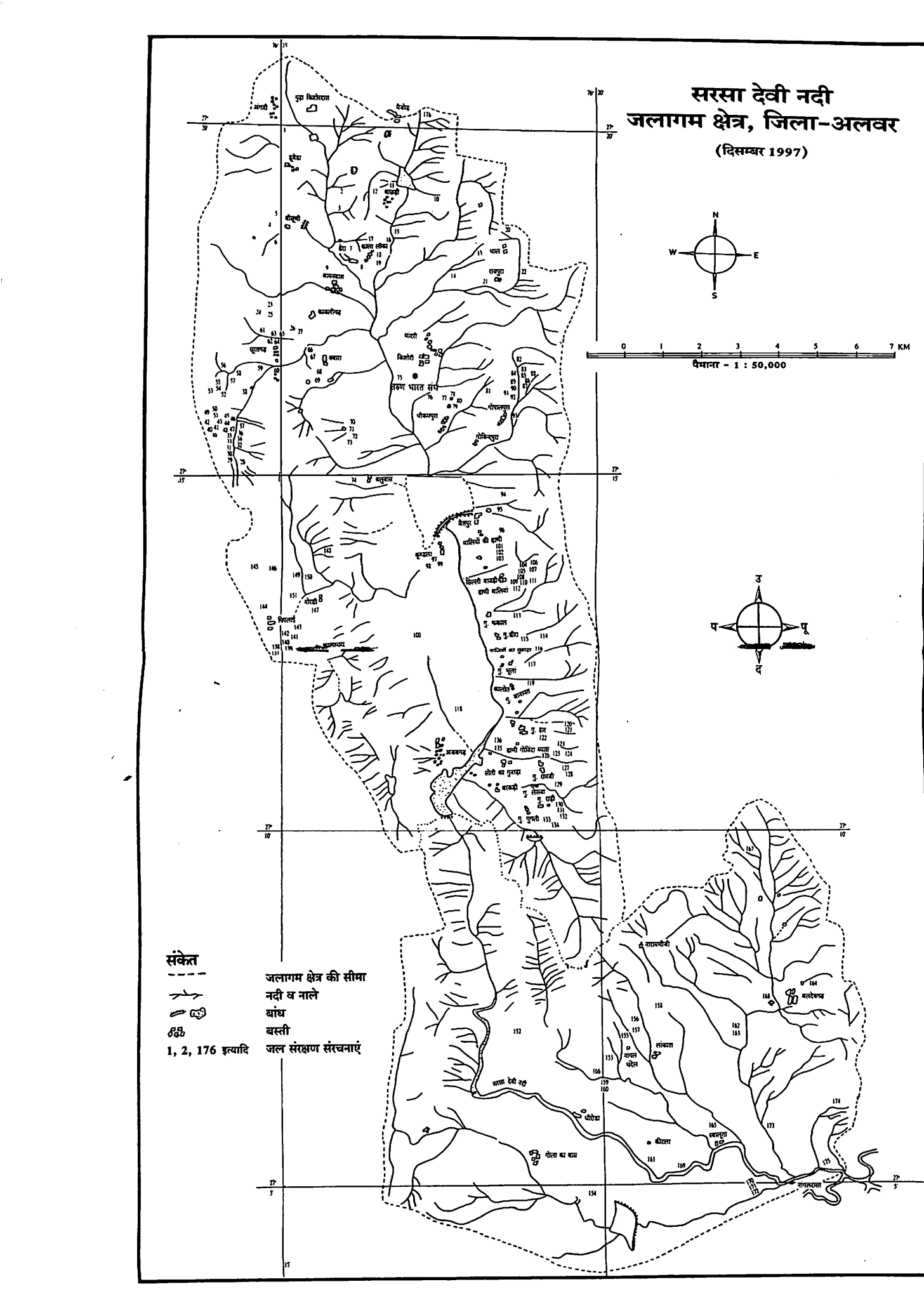

नाला में चना, सरसों की खेती करबे लगो । ई सूं भी ज्यादा फायदो ईका तला आबा वाला कुआं न होगो, जिमे सैकालों कुओं तो चौमासा में फुल ही भर जाव छा चाहे ऊपर बैठ्या-बैठ्या ही कुर्ला, फॉकला और पानी पी ल्यो।

जगदीश महंत कहते हैं कि मैं खुद बांध बनबा सूं पहल्या कुआं सुखबा सूं जयपुर में कमाबा चल्यों गयो छो । जयपुर में मूंगफली और कुल्फी को धंधो करबा लग ग्यो छा । पर आज ई कुआं में पानी की कमी को छः । उ टाइम में दाणा खाबा न भी कोन हो छा, पर आज इसी धरती में 90-95 मन गेहूँ पैदा करूं छूं । पानी खूब होबा सूं कुआं मा इंजन लगवा लियो। अब इण्डें ही रामजी की मौज होगी। अब जयपुर जानो छोड़ दिया और आपणा खेतां में खेती करूं छूं और दूध और भैंस राखू छूं ।

सरसा नदी पर बांध से नदी तो पुनरुज्जीवित हुई ही, गांव भी फिर से जी उठा । आज के हरे-भरे खेतों को देख कर कोई नहीं कह सकता कि कभी इसी गांव में लोग अन्न के बिना मर रहे थे। यहां से पलायन कर रहे थे । इस तरह की कायापलट की कोई कल्पना भी नहीं थी सूरतगढ़ में । आज किसी को सहज ही विश्वास नहीं होता अपने गांव की स्थिति को देखकर । कहां तो दाने-दाने को मोहताज थे, आज वानिकी खेती में भी सबसे अव्वल हैं । पानी की पर्याप्त मात्रा से खूब सब्जियां होने लगी हैं। टमाटर, बैंगन आलू, ककड़ी, खरबूजे, भिंडी, घीया, मूली, गाजर आदि की खेती की जाने लगी है। अब गांव में सब्जियां उगाकर सूरतगढ़वासी थानागाजी और अलवर मंडी में बेच आते हैं । सब्जी का धंधा मुख्य रूप से कीर और मेहरा जाति करती हैं । परन्तु वानिकी खेती में इन जातियों की उन्नति और कमाई से मीणा जाति के लोग भी टमाटर आदि की बाड़ी लगाने लग गये हैं । कुछ ने तो अपने खेत कीर जाति के लोगों को बंटाई पर दे दिये हैं । **कन्हैया लाल** का कहना है कि सब्जी के लिए पर्याप्त पानी की जरूरत होती है । अगर न हो तो पैदावार बिल्कुल ही नहीं होगी । यदि फूल आने पर एक दिन भी पानी की कमी आ गयी, तो एक दिन में फूल नष्ट हो जाएंगे । फिर दुबारा फूल आने में चार-पांच दिन लग जाते हैं । आज गांव में खूब पानी है, इसीलिए वानिकी खेती के मामले में हम सबसे आगे हैं ।

सूरतगढ के काम को देखकर क्यारा गांव में भी जोहड़ों के निर्माण की शृंखला शुरू हो गयी । यह गांव कभी मीणों की राजधानी रहा था । पर उस जमाने का बना तालाब पूरी तरह टूट-फूट चुका था । क्यारा वासियों ने सबसे पहले उसी तालाब की मरम्मत का काम हाथ में लिया। परिणाम स्वरूप आज क्यारा के पास से भी सरसा की एक पतली सी धारा बहती रहती है । पूरे साल । यह धारा किशोरी के पास पहुंचकर सरसा की मुख्यधारा में मिल जाती है ।

किशोरी गांव के **कल्याण** एवं **श्रीनारायण बोहरा** ने अपने परिवार तथा सगे संबंधियों के श्रम के बल पर एक बड़ा सा एनीकट बना

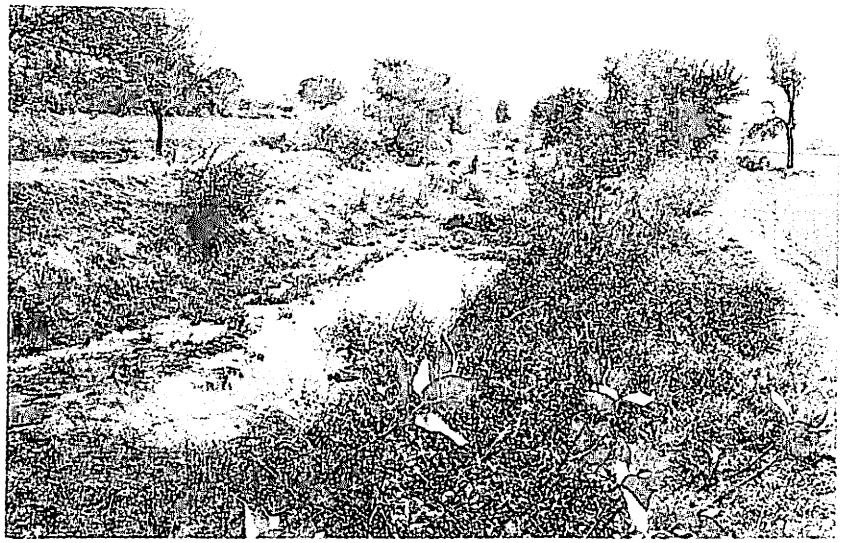

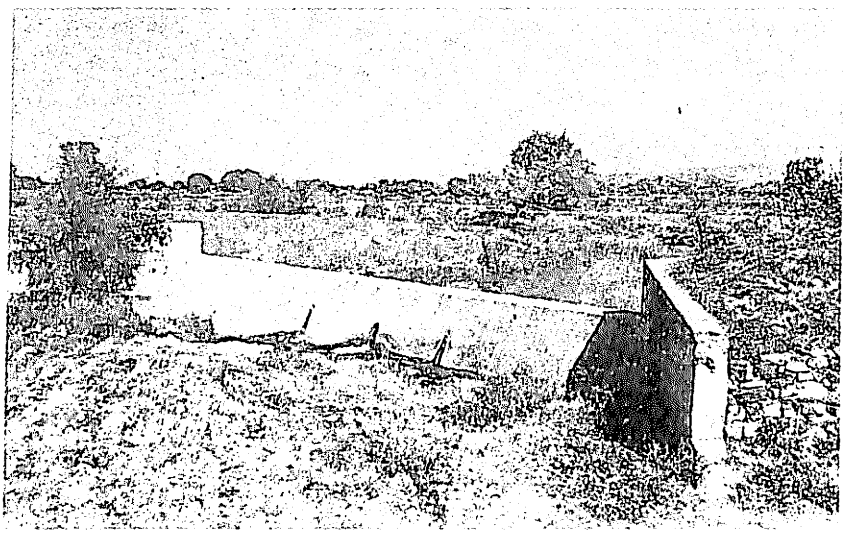

देने की ठान ली इस एनीकट के नीचे से सरसा नदी की एक बड़ी धारा बन जाती है । भर गरमी में भी इस एनीकट में से 6 इंच व्यास की एक मोरी चलती रहती है । लगातार।

एनीकट से थोड़ा आगे चलकर नदी का आकार काफी बढ़ जाता है।

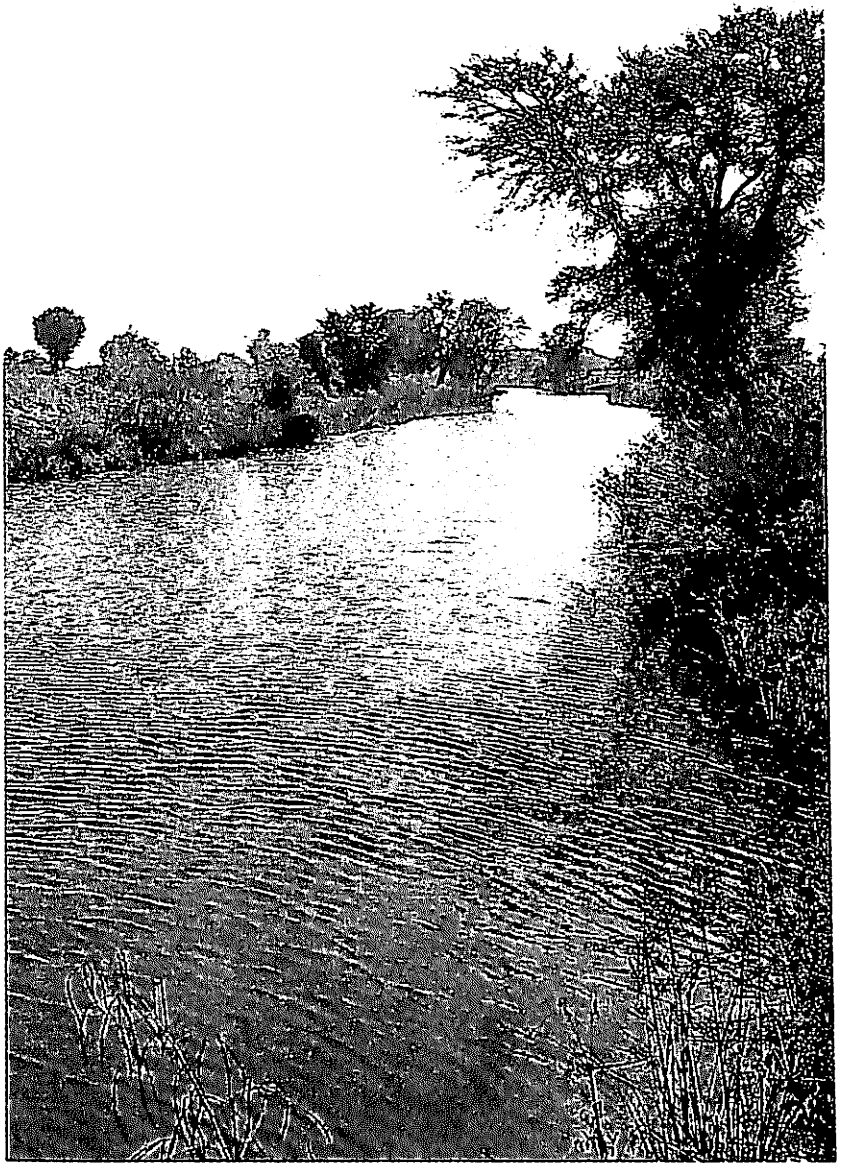

किशोरी के मीणे भी एनीकट के निर्माण में किसी से पीछे नहीं है। यहां के 7 परिवारों ने मिलकर रायपुरा भाल की तरफ से आने वाली जलधारा पर एक सुंदर एनीकट का निर्माण किया है। यह एनीकट 1987

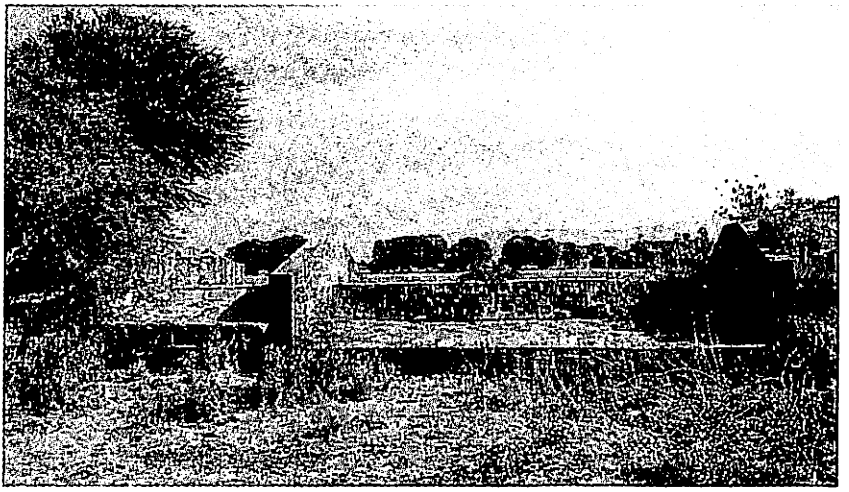

में बनकर तैयार हो गया था। इसके बनने से पहले इनकी भूमि पर अनाज की थोड़ी सी पैदावार नहीं होती थी। आज यहां सैकड़ों मन अनाज पैदा होने लगा है।

गोपालपुरा गांव ने सरसा नदी पुरुज्जीवित करने में यूं तो सबसे पहले श्रीगणेश किया था। इसके काम को देखकर ही आज इस तरह का काम पूरे अलवर जिले में फैल गया है। यही के **मांगूराम पटेल** ने **तरुण भारत संघ** को जल संरक्षण का पहला पाठ पढ़ाया था।

गोपालपुरा के ग्राम संगठन ने लंबी चर्चा के बाद जो काम शुरू किया था उसमें सरकार की तरफ से अनेक अडंगे लगाए गए थे । यहां के बांध को तोड़ने के लिए सिंचाई विभाग (सरकार) ने नोटिस दे दिए थे। तथा इनके हरे गोचर को बर्बाद करने के लिए यहां की जमीन प्रशासन ने बाहर के लोगों को आवंटित कर दी । इसका यहां की ग्रामसभा ने संगठित होकर विरोध किया था। परिणामत: एक गहरा विवाद शुरू हो गया था। इस विवाद को समाप्त करने के लिए चिपको आंदोलन के **चंडीप्रसाद भट्ट,** तत्कालीन प्रधानमंत्री के पर्यावरण सलाहकार **अनिल अग्रवाल** तथा जनसत्ता के प्रधान संपादक **प्रभाष जोशी** से जाने माने लोगों ने मध्यस्थता की थी ।

गोपालपुरा से नीचे गोविन्दपुरा ने भी मिलकर बीसावाला बांध तथा छोटे-छोटे जोहड़ों का निर्माण किया था । जंगल बचाने के लिए गोपालपुरा व गोविंदपुरा दोनों ने मिलकर एक मजबूत संगठन बनाया था। यह संगठन हर अमावस्या को मिलकर अपने जंगल को बचाने की रण-नीति तैयार करते थे तथा उनके नियमित अनुपालन के लिए तेजाजी के स्थान पर बैठकर चर्चा करते थे ।

इन गांवों के प्रयास से हरे-भरे बने जंगल में गोचर को देखने के लिए सरकारी अधिकारी भी आने लगे थे। यह चौदह सौ बीघा का गोचर देखकर श्री **प्रभाष जोशी** ने कहा था : **इस गांव से सरकार को प्रेरणा लेकर देश के गोचर जंगल लोगों को सौंप देने चाहिए। तभी लोग अपने गोचर जंगल को बचा सकते हैं।**

सरसा नदी के जलागम क्षेत्र के बीचों बीच बसे भीकमपुरा में भी कई छोटी-छोटी जोहड़ियों का निर्माण हुआ । भीकमपुरा की नंगी पहाड़ी (जहां आज **तरुण भारत संघ** का आश्रम है) पर 1986 में घास तक नहीं थी । पेड़ों की तो बात ही क्या । यहां **तरुण भारत संघ** के

कार्यकर्त्ताओं ने पत्थरों में खड्डे खोदकर वृक्षारोपण किया था। यह इलाका आज एकदम सरसब्ज हो गया है।

भीकमपुरा के लोगों ने जंगल बचाने के लिए एक पुरानी परंपरा को नए तरीके से पुनः प्रतिष्ठित किया। रक्षाबंधन के दिन यहां की महिलाएं व पुरुष पेड़ों को राखी बांधते हैं।

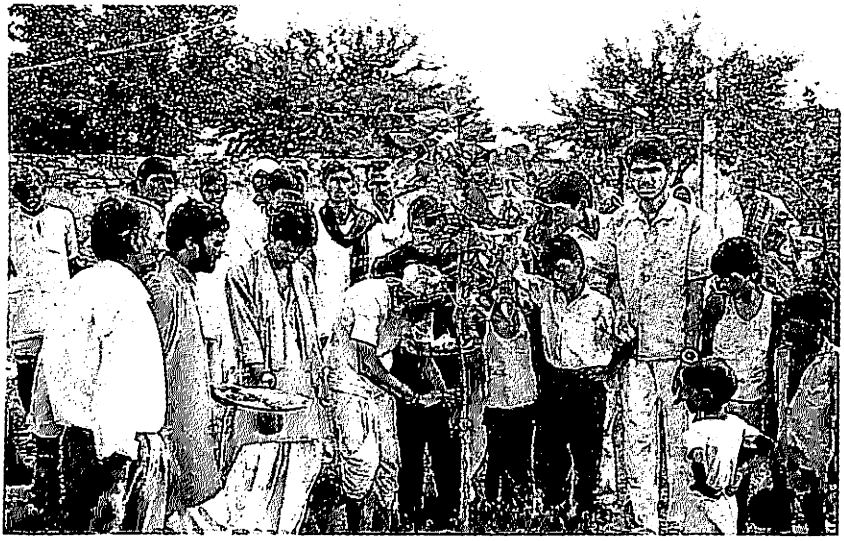

तरुण भारत संघ ने भीकमपुरा गांव में वानिकी खेती भी शुरू की।

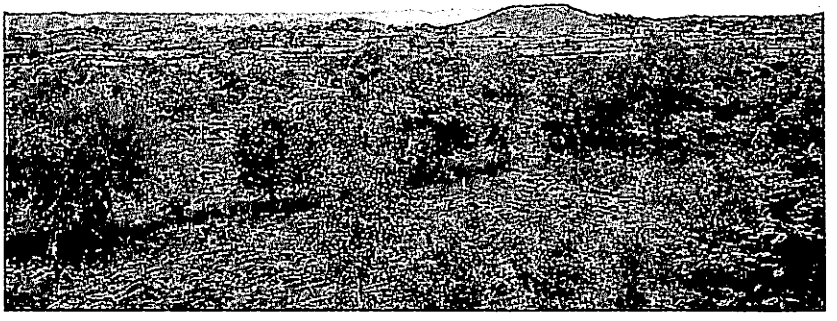

पिपलाई कालापारा के लोगों ने भी पानी की तंगी भुगतते हुए पलायन से तंग आकर पानी का काम शुरू किया था। यहां के खाती परिवारों तथा राजपूत परिवारों ने जोहड़ों का निर्माण किया। कई परिवार जो बाहर चले गए थे उन्होने अपने खेतों पर बांध बनाकर खेती का काम शुरू कर दिया है। अब वे गांव में ही रहने लगे हैं।

भीकमपुरा के पास के गांव बलवास और दौलतपुरा ने तरुण भारत संघ की मदद से जो जोहड़ बनाए उनमें आज पूरे साल पानी रहता है। यहां के कुओं में पर्याप्त जल हो गया है। अजबगढ़ के 27 गुवाड़ों के लोग भी जोहड़ बनाने के काम में पीछे नहीं रहे हैं जबकि इनके पास तो महाराजा जयसिंह का बनाया हुआ जयसागर पहले से ही था। फिर भी इन्होंने इस काम में बेहद उत्साह दिखाया है। यहां के लागों ने केवल तालाब ही बनवाए बल्कि जंगल बचाने के लिए आंदोलन भी चलाए। जब इनके जंगल में पोद्दार समूह एक बड़ा होटल बना रहा था, तो इन्होंने उसके खिलाफ हाईकोर्ट में मुकदमा दायर कर दिया। इस कारण होटल निर्माण का कार्य फिलहाल रुका हुआ है।

जयसागर के नीचे गोला का वास, कीठला, नांगल चंदेल, लाकास बल्देवगढ़, श्यालुता, धीरुड़ा आदि गांवों के लोगों ने ऊपर का काम देखकर अपने क्षेत्रों में काम शुरू किया। कीठला वासियों ने अपने गांव में जो एनीकट बनाया है उससे आसपास के 8-10 गांवों में पानी का संकट दूर हो गया है। इनके गांवों को काम को देखने के लिए अब दूर-दूर से लोग आने लगे हैं।

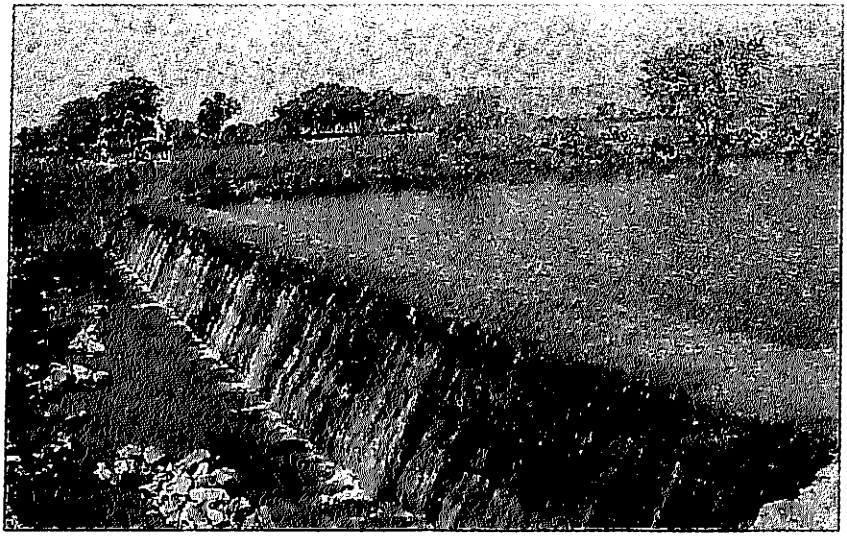

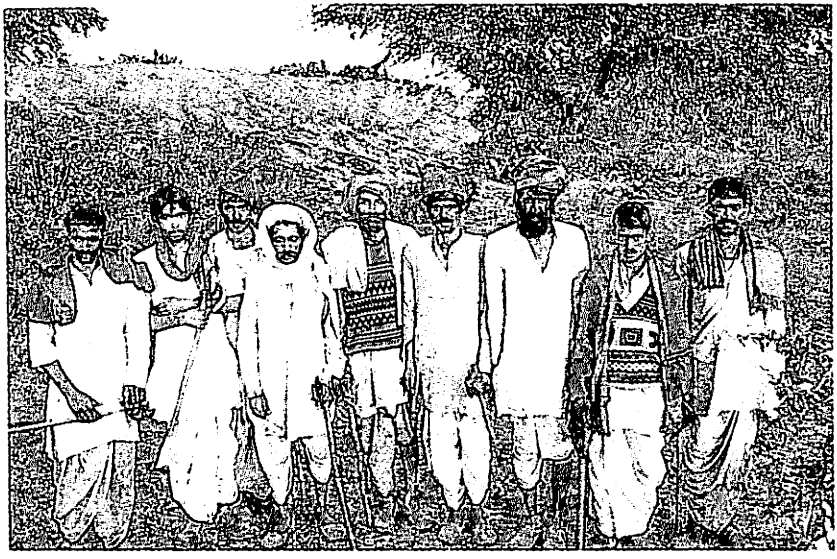

नागल चंदेल के लोगों ने भी सरसा की एक उपधारा पर काम शुरू किया और एक एनीकट बनाया। साथ ही लाकास के लोगों ने भी जलसंरक्षण का बड़ा काम किया। धीरुड़ा गांव के ग्वालों ने तो आश्चर्यजनक काम किया है। यहां के ग्वाले पहले जंगल काटते थे लेकिन अब जंगल को बचाने तथा हीरामल बाबा का जोहड़ बनाने का काम कर रहे हैं।

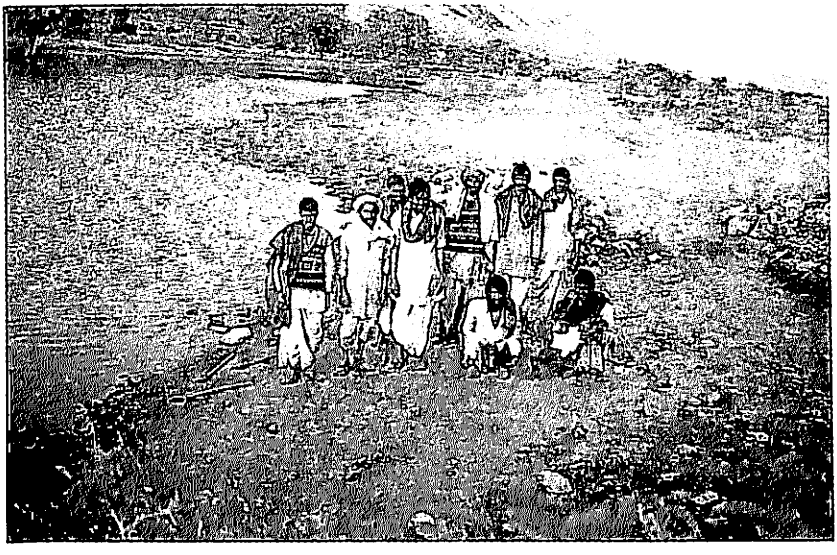

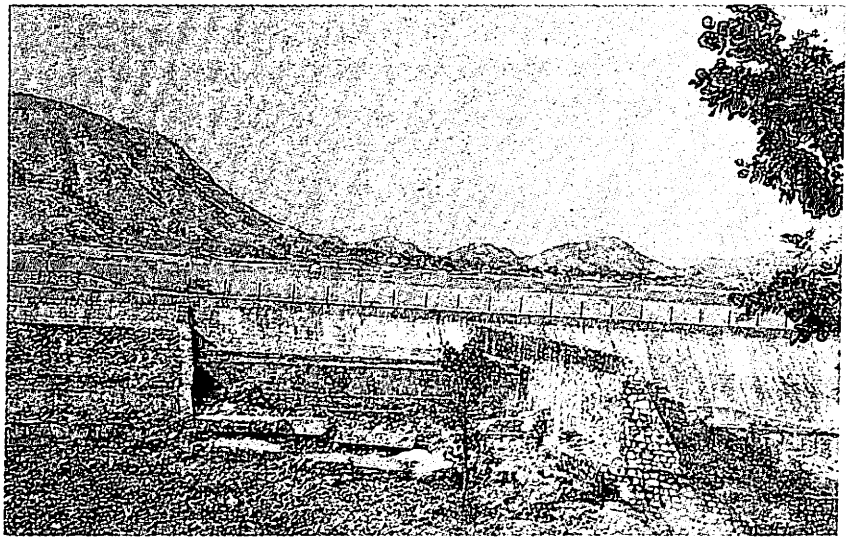

श्यालुता गांव ने अपने गांव के सामने नदी पर एनीकट बनाया जिसके ऊपर से सरसा नदी सदा बहती रहती है। इस एनीकट के नीचे की ओर अब एक-एक कुएं पर एक साथ चार-चार इंजन चलते हैं तो भी पानी की कोई कमी नहीं पड़ती।

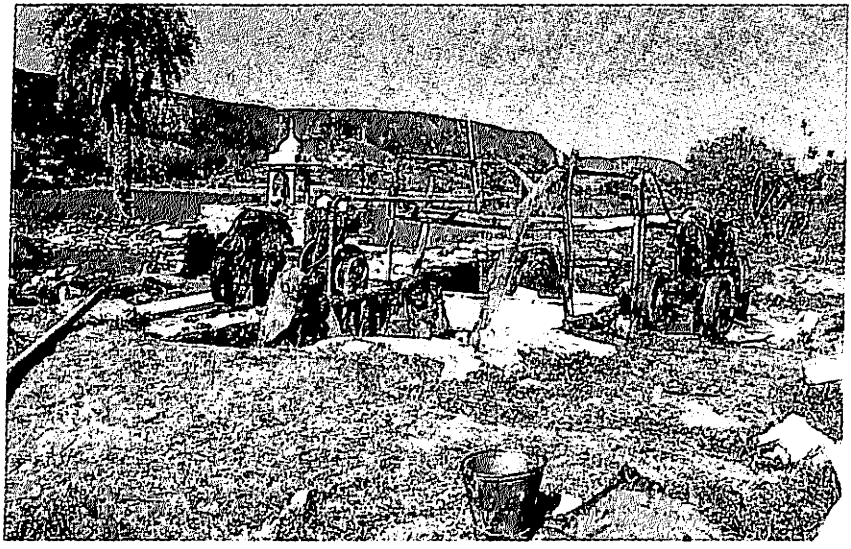

श्यालुता के लोगों ने अब महासूनी नदी पर कई एनीकटों का निर्माण किया है जिसके कारण सरसा नदी में अब काफी पानी आकर मिल जाता है ।

सहेजने की चीज है विरासत...

सरसा नदी जीवित हो गयी है। लोगों के मन की सांस्कृतिक सिंचाई भी अब शुरू हो गयी है। पानी में लोगों को अपनी बेहतर व्यवस्था का सपना दिख रहा है। विरासत में मिले हुनर का कमाल सबके सामने है। विरासत का जिक्र छिड़ते ही कथित आधुनिकतावादी नाक-भौं सिकोड़ने लग सकते हैं, पर इस अंचल के आज के हालात का संदेश यही है। पिछड़े, और बुनियादी सुविधाओं सेवाओं तक से वंचित, लोगों का भविष्य विकास के पश्चिमी मॉडल में नहीं है बल्कि अपनी ठेठ देशज अनुभव संपदा में है। इसका अर्थ यह कतई नहीं है कि सब कुछ जैसा हजारों साल पहले था, वैसा ही पुनर्सृजित कर दिया जाये। वैसा तो हो भी नहीं सकता। दरअसल इसका असल अर्थ यह है कि अपने अनुभव को नये सिरे से देख-परख कर और यहां वहां जरूरत के मुताबिक तरमीम करके उसे व्यवहार में लाया जाये। यह ध्यान देने की बात है कि हमारी परंपरा और विरासत में जो कुछ भी स्वस्थ और आज भी प्रासंगिक है, वही ध्यान दिये जाने योग्य है। वही व्यवहार में लाये जाने योग्य

है। बाकी सब तो रुढ़ि है। जड़ है। बात चाहे जोहड़ की हो, या फिर दस्तकारी के हुनर की। आज हम संकट और दुविधा की हालत से इसलिए भी दरपेश हैं कि विरासत को हम बिना समझे खारिज कर देते हैं। या यों कहें कि विरासत की बात हमारे आधुनिकता बोध को आहत कर देती है। आधुनिक होने के लिए अतीत से कटना जरूरी नहीं है, अतीत में जो सर्वश्रेष्ठ है, उसे अपना कर और उसका विस्तार करके ही आधुनिक बना जा सकता है। वरना ऐसी आधुनिकता किस काम की, जो बदहाली का जीवन बिता रहे गांव के लोगों को मानवीय गरिमा भी प्रदान नहीं कर सके। उदाहरण के लिए हमारे यहां पेड़ों को पूजने की परंपरा है। बहुतों को पूजने की बात पुरानी लगती है। पिछड़ी लगती है। लेकिन अगर यह सोचा जाये कि पेड़ों के पूजने की न जाने कब से चली आ रही रीति ने पेड़ों को बचाने का ऐतिहासिक काम किया है तो शायद चीजें साफ भी होने लगें और विरासत में मिला वृक्ष प्रेम हास्यास्पद भी न लगे। थोड़ा और गहरे जाया जाये, तो हमारे पूर्वजों की दूरदृष्टि भी उजागर हो सकती है। क्योंकि जब जीवन का यह आचरण शास्त्र निर्मित हो रहा था, तब तो पर्यावरण को लेकर न उतना शोर था और न उतनी ऊंची-ऊंची बातें हो रही थीं। यह उन लोगों का सहज ज्ञान था जिसने उन्हें काल का अतिक्रमण करके भविष्य में आनेवाले संकट का पूर्वाभास करा दिया था। पर आज जहां सारा जोर **भोग** पर है, वहां **सरोकारहीनता** भी स्वाभाविक है। आज जब जंगल के जंगल नष्ट हो रहे हैं, अधिकांश आधुनिकतावादी उसी तरह बेफिक्र हैं जैसे **नीरो** था, जब **रोम** जल रहा था। **वह रोम के जलने की घटना से बेखबर चैन की बंसी बजा रहा था।**

हमारा दिल इतना छोटा हो गया है और दृष्टि इतनी सीमित कि हम अपने समय में ही सिमट जाना चाहते हैं। आनेवाली पीढ़ियों के लिए कुछ बचाकर रखना हमें अपनी संपत्ति का एक बड़ा हिस्सा लुट जाने जैसा लगता है। इन्हीं भोगवादी प्रवृत्तियों के कारण लोक कंठ में रची-बसी कहावतें अब अपनी अर्थवत्ता खाने लगी हैं। बहता पानी निर्मला अब बहता पानी गंदला की तरह प्रस्तुत हो रहा है। नदियां दर नदियां प्रदूषित हो रही हैं। सूख रही हैं। आज सरिस्का अगर फिर से गुलजार है, ते लोक परंपरा से मिले रास्तों की वजह से ही। **सरसा** का अगर अबाध गति से बहना शुरू हुआ है, तो लोगों के बीच पारंपरिक चेतना के लौटने की वजह से ही।

सरसा के सरस जाने से अंचल के गांवों में आर्थिक बदलाव आया है। और वह चूंकि मापा जा सकता है, और प्रत्यक्ष दिखता भी है, उसका उल्लेख अधिकांश उन अध्ययनों में किया गया है, जिनके केंद्र में ये गांव रहे हैं। कुछ परिवर्तन ऐसे भी हो रहे हैं, जो चूंकि चेतना के स्तर पर हैं, एकदम दिखाई नहीं देते। कम से कम बाहर से एकाध दिन के लिए आने वालों को तो बिल्कुल नहीं। पर ग्राम सभा के सदस्यों, महिला सभा की सक्रिय कार्यकर्ताओं और इन्हीं के बीच से उभरे संस्था के कार्यकर्ताओं से कई दिनों तक चले संवाद ने कुछ ऐसी चीजों को उजागर किया, जो पानी और खेती के सीमित समीकरण का अतिक्रमण करती हैं।

तैयारी बड़े सामाजिक बदलाव की...

सरसा सरसा गयी, तो न केवल पेड़ ज्यादा दिखने लगे, पेड़ों का हरापन भी जैसे और सघन हो गया। यह हरापन उल्लास और प्रसन्नता का सूचक और प्रतीक होता है। जिसकी पुष्टि करने के लिए लोगों के चेहरों को देखना भी देखनेवालों के चेहरों को हरियल बना देता है। आज परिवार के परिवार यदि आर्थिक रूप से समृद्ध हैं, तो इससे महिलाओं की स्थिति भी बेहतर हुई है। विकास के किसी भी पैमाने में महिलाओं का केंद्रीय स्थान इसलिए भी होना चाहिए कि पुरुष से कमजोर मानी जाने वाली महिला के योगदान का वस्तुगत मूल्यांकन आम तौर से नहीं होता। यह पुरुष प्रधान समाज की अहमन्यता का द्योतक भी हो सकता है और महिला के प्रति संवेदनशून्यता की निशानी भी। महिलाएं अधिक श्रम कर लेती हैं, अधिक धैर्यवान होती हैं और चेहरे पर शिकन लाये बगैर बहुत सारे ऐसे कष्टों को सह लेती हैं जिनसे गुजरना शुरू होते ही पुरुष कराह उठते हैं। हाय-हाय करने लगते हैं।

पानी की भरपूर उपलब्धता इस अंचल की महिलाओं को अधिक खाली समय उपलब्ध कराने में भी सहायक हुई। क्योंकि अब उन्हें पहले की तरह पानी के जुगाड़ में दिन-रात खटना नहीं पड़ता है। घर के काम-काज और बच्चों की पहले से बेहतर देखभाल के बाद भी काफी समय मिल जाता है उन्हें। इस खाली समय का इस्तेमाल वे ऐसे कामों में लग कर करना चाहती हैं जो उनकी अलग पहचान बनाये। साथ ही जो अतिरिक्त आमदनी का

जरिया भी बने। यहां कभी दरियां और बिछौने बनाने का काम हुआ करता था। जो क्रमशः लुप्त होता चला गया। वे इसे फिर से अपना लेना चाहती हैं। महिला मंडल की बैठकों में उपस्थित होकर हम उनकी इस आकांक्षा से परिचित हुए हैं। अभी कोई ठोस रूप तो यह आकांक्षा ग्रहण नहीं पायी है, पर इसका बीज रूप में बने रहना भी कोई कम उत्साहवर्द्धक नहीं है। **क्योंकि बीज ही तो जन्म देते हैं वृक्षों को। बड़े-बड़े वृक्षों को।**

एक दूसरा हुनर जो पुरुषों और महिलाओं दोनों के पास है, वह है चापुन्या की लकड़ियों से टोकरियां बनाने का। जंगल के क्षत-विक्षत हो जाने के परिणामस्वरूप यह हुनर भी लुप्त हो चला गया उनके जीवन से। अब जब दिन पलटे हैं, तो खूबसूरत और रोजमर्रा के काम में आने वाली टोकरियां फिर से बनने और दिखने लगी हैं। हुनर और कौशल की यही तो खूबी होती है कि दस्तकार दो-चार, पांच-दस साल में उसे भूल नहीं जाता है। खो नहीं देता है।

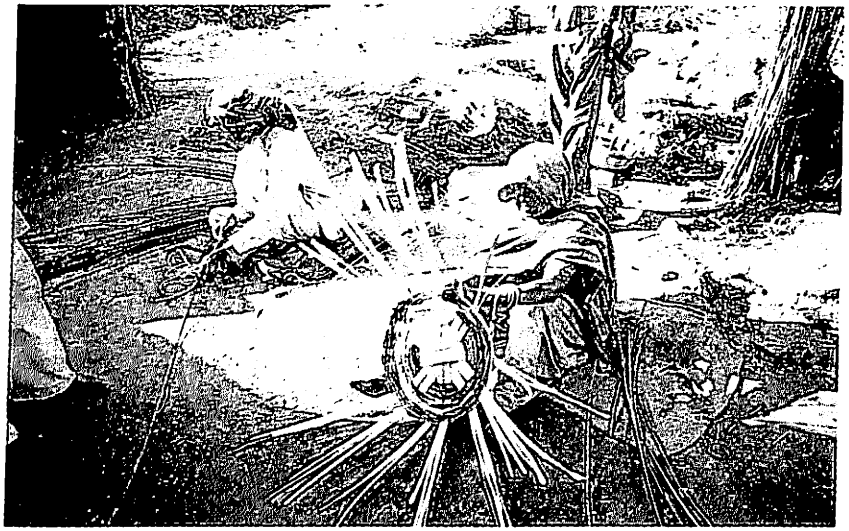

सरसा के जलागम क्षेत्र के गावों में पिछले दिनों एक जो नया प्रयोग हुआ है, वह है सब्जी-भाजी की खेती के प्रसंग में। बड़ी मात्रा में पैदा होने वाली तरह-तरह की सब्जियां न केवल इन्हें आर्थिक दृष्टि से संपन्न बना रही हैं, बच्चों और परिवार के लिए बेहतर पोषण भी उपलब्ध

करा रही हैं चूंकि हरी सब्जियों में वह सब कुछ होता है, जो संतुलित आहार के लिए जरूरी है, यह एक नये युग के सूत्रपात का सूचक भी बन जाता है । क्योंकि जहां चिकित्सा सुविधाएं सहज उपलब्ध न हों, वहां इससे बेहतर क्या हो सकता है कि आहार के असंतुलित होने के कारण जो बीमारियां पैदा होती हैं, उनके पैदा होने के कारण ही दूर हो जायें ।

पानी की सहज उपलब्धता ने इन्हें नवाचार करने, नये विकल्प तलाशने और समता पर आधारित आत्मनिर्भर समाज निर्मित करने की दिशा में भी अग्रसर किया है । देश के पैमाने पर न भी सही, तो भी अंचल के पैमाने पर की जानेवाली पहल का अपना महत्व होता है । **जैसे बूंद-बूंद से नदियां बनती हैं और बनते हैं समुद्र, वैसे ही गांव-गांव की बढ़ती सचेतनता, सक्रियता और भागीदारी दूसरे अंचलों के गांवों की सचेतनता से मिलकर एक नये समाज की नींव रख सकती हैं ।**

यहां के गांवों द्वारा लिया गया ग्राम स्वराज्य का संकल्प दरअसल खुदमुख्तारी की घोषणा है । इसे सरकारी स्तर पर आज गंभीरता से न भी लिया जा रहा हो, पर सोच और कर्म की यह दिशा बनी रहे, तो यह समाज के अंगड़ाई लेने के संकेत हैं । **अपना** जल, **अपना** जंगल, **अपनी**

जमीन, **अपना** गोचर, **अपना** ओरण एक **नयी चेतना** और **नयी भाषा संस्कार** का सूचक है। इस बात का उद्घोष कि हमें आपकी जरूरत नहीं है। इन सबका प्रबंधन अपने बूते पर हम खुद कर सकते हैं। ❑

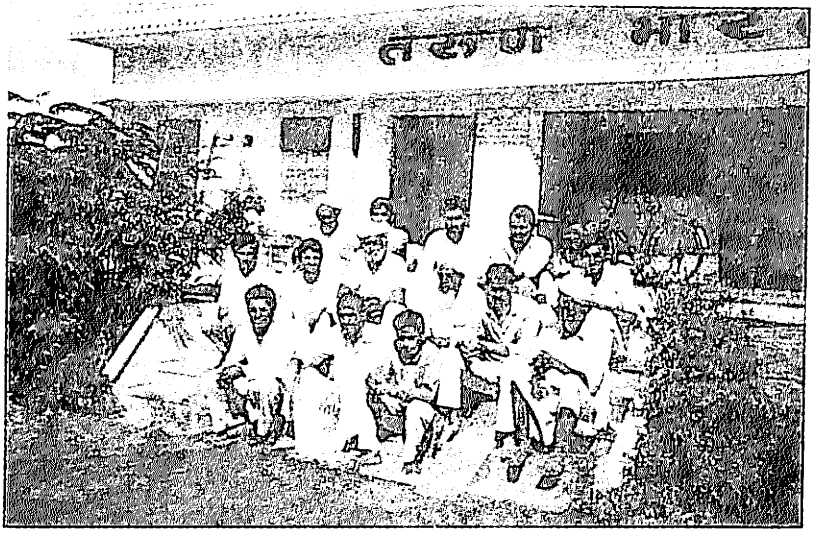

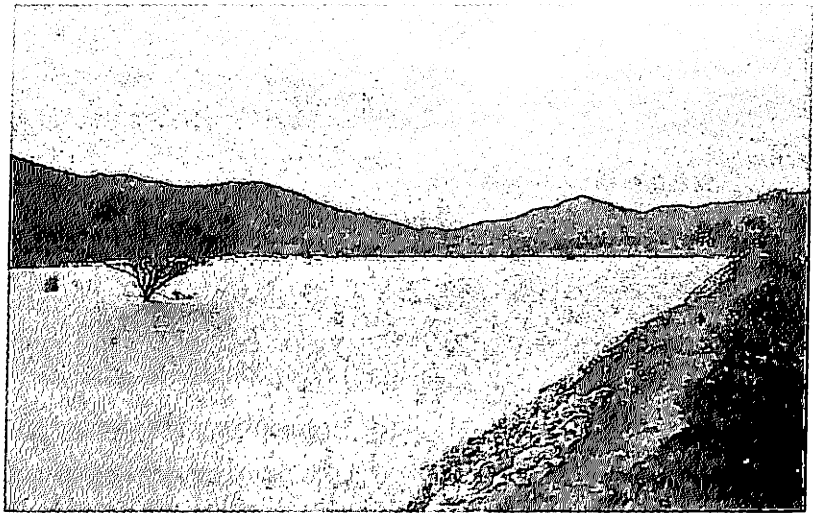

सरसा नदी को पुनर्जीवित करने वाले महिला-पुरुषों का एक सम्मेलन

सरसा नदी के जलग्रहण क्षेत्र को हरा-भरा बनाने के लिए चेतना यात्रा दल

तरुण भारत संघ
भीकमपुरा-किशोरी, थानागाजी,
अलवर-301 022

मुद्रक : कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर

रु. 21/-